शोध मंथन Vol. XIII No.IV Oct.-Dec. 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

उपनिषद – पर्यावरण के आध्यात्मिक स्वरूप का उत्कर्ष

प्राप्तिः 17.12.2022
स्वीकृतः 24.12.2022

80

प्रो० निरंजना शर्मा
राजनीति शास्त्र विभाग
रा० स्ना० महाविद्यालय खाड़ी, नई टिहरी
ईमेलः *dr.niranjanasharma@gmail.com*

सारांश

मानव जीवजगत का एक विकसित सदस्य है आदिकाल से प्रकृति व मानव का अट्ट सम्बन्ध है सभ्यता के विकास में प्रकृति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विकास के प्रारम्भिक चरण में मनुष्य ने प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके अनुकूल होने का प्रयास किया किन्तु धीरे–धीरे प्रवृन्ति में परिवर्तन का प्रयास करने लगा आधुनिक समय में शहरीकरण व नगरीकरण की प्रवृन्ति ने मनुष्य को ही प्रकृति का स्वामी बना दिया प्रकृति का शोषण हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों का शोषण कर रही है। पर्यावरण का तात्पर्य उन समस्त वाह्य दशाओं व प्रभावों का योग है जो प्राणी भूमि की वनावट, वन, खनिज पदार्थ मान्यतायें आदि से सम्बधित है।... सांस्कृतिक प्रतिमान जैसे धर्म, भाषा, आदर्श, प्रथाएँ, परम्पराएँ, जन रीतियां, लोकाचार, अविष्कार आदि भी हमारे जीवन को प्रभावित करते है। इन सभी प्राकृतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दशाओं की सम्पूर्णता ही पर्यावरण है। प्रकृति के असंतुलन तथा अति दोहन ने मानवीय जीवन को झकझोर दिया है। जिसके असंतुलन का प्रभाव मानवीय संवेदनाओं पर पड़ा है।

वेदों की शैली देव स्तवन की है। वैदिक चतुर्दिक बाह्य आवरण अर्थात पर्यावरण में दृश्यमान एंव अनुभूत तत्व पिण्डों एंव प्राकृतिक घटनाओं यथा–अग्नि, वायु पृथ्वी, जल, आकाश, आदित्य, वरूण, मरूत, पर्जन्य आदि का परिचय प्राकृतिक देवताओं के रूप में प्रस्तुत करते है। वैदिक ऋषियों द्वारा मानव चैतन्य में इन प्राकृतिक देवताओं के प्रति श्रद्धा–भक्ति की भावना को उद्दीप्त करते हुए पर्यावरण के प्रति नैतिक चेतना की पृष्ठभूमि स्थापित की गई थी। वेदों के पूर्व भाग में उपासना एंव कर्मकाण्ड अर्थात यज्ञ–विधान का प्रतिपादन किया गया है। वैदिक ऋषियों द्वारा उपासना एंव यज्ञ कर्मकाण्ड के माध्यम से पर्यावरणीय सौहार्द संवर्द्धन एंव संरक्षण की दिव्यशिक्षा के संस्कार सहस्त्रों वर्ष पश्चात् वर्तमान युग में भारतीय जनमानस में कूट–कूट कर भरे हुए है। किन्तु ऋषि चेतना ने यह भी अनुभव किया कि उपासना, यज्ञापि पर्यावरण शुचिता कि यथार्थ उपाय नहीं है। ऋषियों ने चितंन किया कि अज्ञान अथवा अविद्या रूपी मलिनता के आवरण को अनावृत करके ही पर्यावरण के परम शुद्ध स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है। अविद्या का प्रदूषित आवरण प्राणियों के साथ जन्म–जन्मान्तर के संस्कारों के रूप में लिप्त है। राग, द्वेष, ईर्ष्या, भोग–विलास जैसी दुष्प्रवृत्तियों के रूप में ये संस्कार ही कार्य व्यवहार के रूप में परिवर्तित होकर

पर्यावरण प्रदूषण का संकट पैदा करते है। अविद्या का अनावरण आत्मा के ज्ञान से होता है। आत्मा का चिंतन औपनिषद् का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। उपनिषदों का लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान के साधन से अविद्या रूपी सर्वाधिक मलिन एंव कठोर आवरण को दूर करना है। उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है कि–" जिनसे ये सम्पूर्ण प्राणी जन्म लेते है, जन्म लेकर जिनसे जन्म धारण करते हैं तथा प्रलय के समय जिनमें पूर्णतः प्रवेश कर जाते हैं, उनको जानने की इच्छा करो। इस प्रकार उपनिषद्कार पर्यावरणपरक चिंतन को ब्रह्ममय बनाते है।'' उपनिषद् द्वारा प्रतिपादित आत्मसाधना के साधक को आत्म तत्व के बोध के लिये चित को शुद्ध एंव निर्मल बनाने के साथ–साथ अविद्या के प्रदूषण मुक्ति की पर्यावरणपरक पद्धति है। वैदिक एंव औपनिषद् चिंतन में प्रदूषण मुक्ति का दृष्टिकोण क्रमशः वस्तुनिष्ठ एंव आत्मनिष्ठ है।

वस्तुनिष्ठ पर्यावरण

मानव चेतना का स्वभाव है कि इन्द्रियों एंव मन के अनुगत होकर चतुर्दिक आवरण में विद्यमान विश्व का परिचय प्राप्त करने के लिये प्रयत्यशील रहती है। प्रख्यात दार्शनिक डॉ0 राधाकृष्णन का मानना है कि–"मनुष्य के धार्मिक आभ्यन्तर ज्ञान के उद्गम स्थान दो प्रकार के होते है– वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ अर्थात बाह्य जगत के अद्भुत चमत्कार और मानवीय आत्मा के अन्दर का प्रणिधान।'' वेद प्रतिपादित पंचभूतों तथा प्राकृतिक शक्तियों की दैविक उपासना प्राकृतिक शक्तियों का मानवीयकरण आदि वस्तुनिष्ठ पर्यावरण का बोध कराते है। आत्मनिष्ठ पर्यावरण की व्याख्यात्मक प्रमुखता होने के बावजूद भी ब्रह्म एंव प्राकृतिक सत्ताओं की प्रतीकात्मक व्याख्या से ब्रह्म को वृक्ष के रूप में कल्पना करके की गयी है। चाहे यह व्याख्या प्रतीकात्मकता हो परन्तु गहरे अन्तर्मन में पर्यावरण की पुष्ट अवधारण को प्रमाणित करता है ब्रह्म को एक शाश्वत सत्तावान वृक्ष कहा गया है। वह एक ऐसा अमर वृक्ष है जिसकी जड़े ऊपर होती है और शाखाएँ नीचे होती है। सारी सृष्टियाँ उस पर आधारित है और उससे परे कुछ नहीं है। वस्तुनिष्ठ जीवन पद्धति का अनुसरण करते हुए मानव प्राकृतिक पदार्थों एंव बाह्य जगत के अद्भुत चमत्कारों में ही लीन रहता है तथा सांसरिक व्यवसायों में कर्मण्यता के साथ निंरतर संलग्न रहता है। इसके कारण आत्मा की नित्य, निरतिषय, आनन्द्मय प्रकाशमय सर्वात्मरूपता का ज्ञान नहीं हो सकता है।

वस्तुनिष्ठ पर्यावरण का परिचय दो प्रकार से ग्रहण किया जाता है। प्रथम भौतिक एंव द्वितीय धार्मिक। भौतिकवाद से प्रभावित वस्तुनिष्ठ चिंतन प्रत्यक्षानुभव को ही प्रामाणित मानता है। इसके अनुसार धन–संपदा एंव सुख मानुषी सत्ता के पदार्थ है तथा इस विश्व के अतिरिक्त कोई संसार नहीं है। चार्वाक ऋषि आदि भौतिकवादियों का लौकायतिक भी कहा जाता है क्योंकि इनका मत है कि यही एक मात्र लोक है। वस्तुनिष्ठ भौतिक ज्ञान देश, काल कारण और शक्ति आदि पर्यावरणीय घटकों की सीमा के अन्दर कार्य करता है। इसलिये यह हमें गतिरोध एंव असत्याभास में उलझा देता है। भौतिकवादियों का चिंतन जड़ चिंतन है। अतः इसका पंचतत्वों अथवा उससे निर्मित प्राकृतिक शक्तियों या समग्र पर्यावरण से किसी भी प्रकार का धार्मिक, नैतिक, भावनात्मक अथवा आतर सम्बन्ध नहीं होता हैं। भौतिकवादियों का पर्यावरण के बाह्य स्वरूप से सम्बन्ध होता है जो कि भोग–विलास का साधन मात्र है। आधुनिक युग में भी भौतिकवादियों चिंतन की प्रधानता है। फलतः प्रकृति के भौतिक संसाधनों का अनियन्त्रित दोहन हो रहा है जिसके कारण पर्यावरणीय संकट द्रुत गति से उभर रहा है। नैतिक तत्वों की उपेक्षा के कारण इसके घातक परिणाम सामाजिक प्रदूषण, मानसिक प्रदूषण एंव चारित्रिक प्रदूषण के रूप में भी मानव संस्कृति के लिये चुनौती बनते जा रहे है।

वैदिक कर्मकाण्ड भी वस्तुनिष्ठ प्रधान चिंतन है किन्तु इसका स्वरूप धार्मिक है। पर्यावरणीय सन्दर्भ में वैदिक वस्तुनिष्ठ चिंतन पंचतत्वों एंव उनसे निर्मित प्राकृतिक शक्तियों से प्रगाढ़ भावनात्मक एंव नैतिक सम्बन्धों की स्थापना पर देता है। प्रगाढ़ भावनात्मक सम्बन्धों की व्यष्टिनिष्ठ पर्यावरणीय चिंतन अपनी चरम अवस्था में प्राकृतिक शक्तियों की आंतर में प्रविष्ट हो जाता है। वैदिक ऋषियों की व्यष्टिनिष्ट धार्मिक चेतना का ही परिणाम था कि उन्हें प्राकृतिक शक्तियों में दैविक गुणों से सम्पन्न आराध्य को बोध होने लगा। इस प्रकार व्यष्टिनिष्ट चिंतन के परिणामस्वरूप वैदिक ऋषियों ने जनमानस में पर्यावरणपरक नैतिक चेतना का संचार किया जो कि पर्यावरणीय संदर्भ में मानव जाति के लिये दुलर्भ धरोहर के रूप में आज के युग में अधिक प्रासंगिकता है।

आत्मनिष्ठ पर्यावरण

पर्यावरण के वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से हम सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु आदि समानान्तर धाराओं के समान ही मानव–प्रकृति की समान्तर धाराओं का परिचय प्राप्त करते है। ये धाराएं विरोधात्मक स्वभाव की न होकर परस्पर परे है। इनके सामंजस्य से ही सृष्टि का अस्तित्व बना हुआ है। "बाह्य जगत में तकनीकी विकास के साथ–साथ मानव की असीमित यात्रा चलती जा रही है। इसके माध्यम से असीमित भौतिक उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है। परन्तु अन्ततः वह आत्मसंतोष के लिये अभी तक भटक रहा है। यही कारण है कि सत्यम् शिवं सुन्दरम् जैसे आन्तरिक मूल्य मानवीय जीवन में उतना ही महत्व रखते है। वस्तुतः मानव के आन्तरिक मूल्य उसके बाह्य खोज एंव धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के कई मायनों में पूरक है। नैतिक एंव मूल्यात्मक दृष्टिकोण की पराकाष्ठा अन्ततः आत्मसाक्षात्कार में ही होती है।" मनुष्य इस विश्व की उच्चतम कृति है और सुन्दरतम् तत्वों से विरचित है। शरीर के अन्नमयकोष जीवन के प्राणमयकोष, इच्छा और कामनाओं के मनोयोग कोष, विचार और ज्ञान के विज्ञानमय कोष से मनुष्य को स्वरूप निर्मित हुआ है। इसे सत् चित और आन्नद के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। ज्ञान, सामर्थ्य और क्रिया उसके स्वरूप में है। यह एक भावात्मक यथार्थ है किन्तु समग्र पर्यावरण अपने सम्पूर्ण भौतिक–अभौतिक अंशो यथा–कीट पशु–पक्षी, मानव, वनस्पति आदि जैविक, स्थूल जड़ पदार्थ पंचतत्व, ऋतुचक्र, कालचक्र, एंव ग्रह–नक्षत्र आदि सहित ब्रह्म के साथ किसी अमूर्त रूप या यान्त्रिक विधि से सम्बद्ध नहीं हैं। ये अंश समग्र रूप से ब्रह्म के अन्तर एकीभूत हैं। पर्याप्त के समस्त भौतिक अभौतिक अंश विश्व ब्रह्माण्ड के अथवा विश्वात्मा के आत्मनिष्ठ अंश हैं कार्य ब्रह्म का जो सम्बन्ध अखिल ब्रह्माण्ड से है। उसी प्रकार का सम्बन्ध जीवात्मा का अखिल ब्रह्माण्ड के अंश दृश्यमान जगत अर्थात पर्यावरण से है। अतः पर्यावरण का यथार्थ स्वरूप आत्मनिष्ठ प्रकृति का है। इस प्रकार ब्रह्म ही आत्मनिष्ठ पर्यावरण का सार है। आत्मज्ञानी उपनिषद्कारों ने प्रकृति के ब्रह्मनिष्ठ स्वरूप की पुष्टि करते हुए कहा है कि–पंचतत्वों एंव तत्व पिण्डों की क्रमिक उत्पति भी ब्रह्म ने लोकों की रचना की है। तैतिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि– ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, से अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न और अन्न से पुरूष उत्पन्न हुआ।

वैदिक चिंतन की भाँति औपनिषद चिंतन में प्रकृति के प्रति सघन आत्मीयता एंव श्रद्धा का परिचय मिलता है। वह पर्यावरणीय अंशों में अपने परम आराध्य परमात्मा की विराट झलक का दर्शन करता है यथा–"इन परमात्मा से समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए है, इन्हीं से निकलकर अनेक आकार वाली नदियाँ बह रही है, इन्हीं से समस्त औषधियों और रस उत्पन्न हुए हैं जिससे पुष्ट हुए शरीरों में सबके अन्तरात्मा में परमेश्वर उन सब प्राणियों की आत्मा के सहित उनके हदयों में रहते

है। इतना ही नहीं, उपनिषद्कार समग्र पर्यावरण में ईश्वर की सर्वव्यापकता स्वीकार करते हैं यथा इन विराट स्वरूप परमेश्वर का अग्नि अर्थात द्युलोक ही मानों मस्तिष्क है, चन्द्र और सूर्य नेत्र हैं, समस्त दिशाएँ कान हैं, नाना छनद और ऋचाओं के रूप में चारों वेद वाणी है, वायु प्राण हैं, सम्पूर्ण चराचर जगत हृदय है, पृथ्वी मानो उनके पैर हैं। यही परब्रह्म परमेश्वर समस्त प्राणियों के अन्तरयामी परमात्मा हैं। पर्यावरण के सन्दर्भ में इन मन्त्रों का अत्यधिक महत्व है तथा इनकी समानता ऋग्वेद के पुरूष सूक्त से की जा सकती है। समग्र पर्यावरण में परमात्मा की सर्व व्यापकता का अनुभव होनेपर्यावरण के प्रति आध्यात्मिक श्रद्धा दृढ़ हो जाती है और तद्नुसार श्रेष्ठ आत्मवत आचरण की प्रवृति बनती है जिसका पर्यावरणीय दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्व है। उपनिषद्कार चर्तुदिका आवरण का ब्रह्ममय देखते है। उनिषद्कार घोषणा करते हैं कि–" अमृतस्वरूप ब्रह्म ही इस जगत के रूप में लीला करता हुआ हमारे समाने, पीछे, दाहिने, बायें, ऊपर–नीचे सर्वत्र (अर्थात चतुर्दिक आवरण) प्रसारित हो रहा है। ब्रह्म ही इस विश्व का यथार्थ स्वरूप है और ब्रह्म ही वरणीय है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपनिषदों में पर्यावरण के आत्मनिष्ठ स्वरूप का चितन किया गया है। अथवा अन्य शब्दों में पर्यावरण को ब्रह्ममय बना दिया गया है। किन्तु मनुष्य पर्यावरण के वस्तुनिष्ठ चिंतन तक सीमित रहकर अपूर्णता एंव अभावात्मक बाधाओं से जकड़ा रहता है।

उपनिषद् के मत में सतग्र पर्यावरण तो अयथार्थ है अथवा ब्रह्म का विवर्त मात्र है। उपनिषद्कार पर्यावरण की ब्रह्म के रूप मे उपासना करने का उपदेश देते हैं अर्थात पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचय देते हैं अर्थात पर्यावरण के घटकों की ब्रह्म रूप में उपासना करने से इहलौकिक बाधाएँ तिरोहित हो जाती हैं। उपनिषद्कार के अनुसार जो विज्ञान की ब्रह्म रूप में उपासना करता हैं। उसे ज्ञानवान लोकों की प्राप्ति होती है अर्थात जहाँ–जहाँ तक विज्ञान की सीमाएँ है वहाँ तक उपासक की स्वेच्छिक गति हो जाती है। इसी प्रकार अन्न, जन, तेज, आकाश, वाणी और मन आादि पर्यावरणीय तत्वों एंव विषयों की ब्रह्म रूप में उपासना करने से उपासक को क्रमशः अन्नमयं, जलमय, तेजोमय तथा बाधा रहित विस्तारवान लोकों की प्राप्ति होती है और जहाँ तक एंव वाणी की गति है वहाँ तक उनकी निर्बाध रू‍प से स्वैच्छिक गति हो जाती है। इस प्रकार उपनिषद्कार समग्र पर्यावरण को एक तत्व एंव एक रस के रूप में अभिव्यंजित करके संसार मात्र से उसी प्रकार प्रेम तथा समान करने के लिए अभिप्रेत करते हैं। जिस प्रकार हम अपनी–अपनी पृथक आत्माओं से प्रेम करते हैं।

उपनिषद्कार कहते हैं–"ब्रह्मवेत्ता साधक परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। वह ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। जो साधक परम आकाश में और प्राणियों के हृदय में गुहा में सन्निहित उस ब्रह्म को पा लेता है, वह विशिष्ट ज्ञान स्वरूप उस ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का उपभोग करता है। निश्चय ही उस परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश तत्व प्रकट हुआ। तद्नन्तर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्व उत्पन्न हुआ। पृथ्वी से औषधियाँ और औषधियों से अन्न प्राप्त हुआ है। उपनिषद्कार जिस ब्रह्म भाव का दिग्दर्शन कराते हैं, वह पर्यावरण चिंतन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज हम पंचभूतों में व्याप्त प्रदूषण के कारण प्रदूषित अन्न ग्रहण कर रहे हैं। अन्न की ब्रह्म भाव उपासना पवित्र अन्न का सेवन करने के लिए अभिप्रेत करती है। अन्न तभी शुद्ध होगा जब अन्न की उत्पत्ति करने वाले पंचभूत आकाश, वायु, अग्निं, जल और पृथ्वी शुद्ध होंगे। अन्नादि से प्राप्त ऐश्वर्य भोग में आन्नदमय ब्रह्म व्याप्त है। अतः इस चिंतन से यह धारणा भी बनती है कि अन्नादि भोगों पर सभी प्राणियों का अधिकार है। यह धारणा हमें 'स्व' के चिंतन से 'परमार्थ'

के चिंतन की ओर ले जाती है तथा पर्यावरणीय सम्पदा के असीमित दोहन से रोकती है। 'प्राण' की ब्रह्य रूप में उपासना हमें समग्र जड़–चेतन के संरक्षण के लिए अभिप्रेरित करती है। परिस्थितिकी सन्तुलन की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है।

उपनिषद्कार कहते हैं–" इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय अधिक श्रेष्ठ हैं, विषय से मन श्रेष्ठ हैं, मन से बुद्धि और बुद्धि से भी उत्कृष्ट यह महान आत्मा है। "जीवात्मा से (ईश्वर की) अव्यक्त शक्ति श्रेष्ठ हैं, अव्यक्त व्यक्ति से वह पुरूष (परमात्मा) श्रेष्ठ है, उस परम पुरूष से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है। वह सबकी पराकाष्ठा और परम गति है।" इस प्रकार इन्द्रिय विषयक भोगों का हेय बताते हुए उपनिषद्कार परम तत्व की श्रेष्ठता का ज्ञापित करते हैं।

उपनिषदीय आचारशास्त्र में पर्यावरणीय दृष्टिकोण

यद्यपि उपनिषद्ों के अनुशीलन से सर्वत्र ज्ञान–काण्ड की व्याख्या का बोध होता है तथापि उनमें मानव के लिए आचार शास्त्र का निरूपण भी किया गया है। आत्म ज्ञान के लिए मनसा–वाचा–कर्मणा शुद्ध आचार की पृष्ठभूमि का निर्माण आवश्यक शर्त है। कर्मकाण्ड से मनुष्य उपासना या ज्ञान का अधिकारी होता है। कर्म से उसका आचरण शुद्ध होता है और इससे उसको उपासना में सहायता मिलती है। इस प्रकार उपनिषद्ों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञान काण्ड का क्रम समुच्य कहा गया है। आज सामाजिक सौहार्द का नितान्त लोप हो रहा है। पारस्परिक घृणा से समाज–परिवार विघटित हो रहे हैं। हम पर्यावरण प्रदूषण के संकट से बचने के उपाय तो ढूंढ रहे है। लेकिन जिस समाज में रह रहे हैं उसमें फैलती जा रही घृणा और क्रोध की प्रवृत्ति, ईर्ष्या, द्वेष का भाव, लोभजनित शोषण की प्रवृत्ति, अंहकार, अमर्यादित काम वासना, हिंसा एंव वैरभाव की वैतरणी में आकंठ डूबे जा रहे हैं। अशुद्ध जलवायु से अधिक विकराल तो इस वैतरणी का विषाक्त प्रदूषण है। इस विषक्त वैतरणी को पार करने का एक ही उपाय है कि हम उपनिषद्ों की शिक्षा को हृदयंगम कर उसे आचरण में ढालने का प्रयास करें। ये समस्त विकार 'अनात्माभाव' के कारण होते हैं। समस्त विश्व जगत को 'परमात्मभाव' से देखने पर अनात्म भाव अपने विकारों सहित लुप्त होता है। इसी आशय से उननिषद् में कहा गया है–"जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों को परमात्मा में ही निंरतर देखता है और सम्पूर्ण प्राणियों परमात्मा को देखते है, वह कभी भी भ्रमित नहीं होता हैं। हमारा आचार–व्यवहार–चिंतन ही हमारे कर्मफल के रूप में व्यक्त है। इन्हीं दूषित कर्मों के दुष्प्रभाव से भौतिक–सामाजिक–मानसिक पर्यावरण प्रदूषित होता है।'' एक ओर हम अच्छे स्वास्थ्य की चिंता के लिए शुद्ध जलवायु के संकट का रोदन करें और दूसरी ओर ईर्ष्या, क्रोधादि से अपने आन्तरिक कलेवर को दहलाते रहें (भूकम्प, बाढ़, आदि प्राकृतिक बाधाओं के संकट की लम्बी चौडी बातें करें, साथ ही परिवार–समाज के ताने–बाने को अविश्वास, असहिष्णुता की गाठों के बीच उलझते रहने दें। यह तो बौद्धिक दिवालियेपन का सूचक है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हत सतत् प्रवाहमान आध्यात्मिक ज्ञानगंगा का सेवन निषेध का संकल्प लेकर भौतिक काम–वासना की कुदाल से विनाश का कूप खनन कर रहें हों।)

मानव जीवन की सार्थकता मात्र इतने में ही नहीं कि जीवन को भोग–विलास में व्यतीत कर दिया जाये। सार्थक जीवन में धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष का समावेश है। सदाचार का पालन मानव का आत्मोत्कर्ष करता है तथा सद्चिंतन भी आन्तरिक काया का आनन्द पोषण करता है। औपनिषद् चिंतन का भौतिक प्रगाति से कोई विरोध नहीं। वह तो आत्म तत्व की सर्वश्रेष्ठता का दिग्दर्शन करता है उपनिषद् का अनुशीलन करने से यही भाव ध्वनित होता है कि आत्मनिष्ठ व्यक्ति उपनिषद्ों की

शिक्षा का अनुपालन करते हुए समाज का बहुआयामी सद्विकास करता है। वर्तमान पर्यावरण संकट मनुष्य के विवेकहीनता एंव अनियन्त्रित स्वेच्छाचारी इन्द्रियों का परिणाम है। हमारा अनियन्त्रित भोग व्यवहार ही पर्यावरण का क्षय कर रहा है। विवेक बुद्धियुक्त, नियन्त्रित मन वाला और पवित्र आचरण युक्त मानव तो परमात्मा की अभौतिक का सर्वश्रेष्ठ संवाहक है। उपनिषद् चिंतन का बहु आयामी है। उसमें पारिस्थितिकी को ध्यान में रखते हुए नैतिक चिंतन का समावेश है। उपनिषद्कारों ने कर्म की परिधि को केवल मानव केन्द्रित नहीं बनाया है। इस ब्रह्माण्ड में कीटाणु से लेकर ब्रह्मदेव पर्यत्न जितने भी प्राणी हैं। उन सबसे हमारा सम्बन्ध है। उन सबका हमारे ऊपर ऋण है। उनके द्वारा प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष उपकृत किये जाने से ही हमारा कल्याण हो रहा है। अतः उन सबके प्रति हमारा उपकार कर रहे हैं और न ही उन सबकी से सेवा कर सकते हैं, परन्तु पर्यावरणीय सन्दर्भ में यह चिंतन भी हमारे चरित्र को गौरवान्वित करता है कि हम पदे–पदे दूसरों के ऋणी हैं।

पर्यावरण चेतना के दो पक्ष हैं– भौतिक चेतना एंव आध्यात्मिक चेतना। भौतिक चेतना पर्यावरण शुद्धि हेतु आधुनिक उपाय का आश्रय लेती है लेकिन बढ़ते हुए भौतिक सुख–साधनों के उपभोग के कारण उत्पन्न अथाह प्रदूषण के समक्ष पर्यावरण शुद्धि के वैज्ञानिक उपाय प्रभावी नहीं हो पा रहे हैं। अतः प्रदूषण से मुक्ति का एक ही उपाय है कि भौतिक सुखों के उपभोग की बढ़ती जा रही दूषित मनोवृत्ति के परिष्कार की भी आवश्यकता है। यह परिष्कार आध्यात्मिक चेतना के अवलम्ब लेकर ही समाहित किया जा सकता है। मनोवृत्ति अथवा चित्त का शोधन वर्तमान पर्यावरण प्रदूषण के संकट का समाधान है। उपनिषद्कार चित्त की शुद्धता पर बल देते हुए कहते हैं कि–''चित्त ही संसार है।इस कारण प्रयत्नपूर्वक चित्त का शोधन करना चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य का चित्त होता है उसी प्रकार उसकी गति होती है।'' निःसन्देह उपनिषद्कारों ने आत्मज्ञान की साधना के लिए आंतरिक शुचिता पर ही विशेष बल दिया है लेकिन इसका निष्कर्ष यह भी नहीं है कि वे बाह्य प्रदूषण के प्रति सचेत न रहें हों। आत्म साक्षात्कार के लिए ध्यान योग के साधन हेतु उपयुक्त परिवेश किस तरह होना चाहिए, इस जिज्ञासा पर उपनिषद्कार कहते हैं–" ''समतल, सब प्रकार से शुद्ध, कंकड़, अग्नि और बालू से रहित तथा शब्द, जल और आश्रय की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल और नेत्रों को पीड़ा न देने वाले गुहा आदि वायु शुन्य स्थान में मन को ध्यान में लगाने का अभ्यास करना चाहिए।'' उपनिषद्कार की दृष्टि से मनुष्य के कल्याण का सर्वोच्च लक्ष्य है ज्ञान रूपी पवित्रता का अर्जुन। आज हमारे सामाजिक पर्यावरण में छल, कपट, अविश्वास, हत्या–आत्महत्या, मानसिक तनाव, नशीले पदार्थों का सेवन आदि की बढ़ती प्रवृत्ति हमारी सांस्कृतिक अस्मिता के लिए चुनौती बनती जा रही हैं। उपरोक्त मन्त्र में उल्लिखित 'मानसिक शौच' से ही इस चुनौती का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है।

महान नैतिक प्रत्यय सत्य, अंहिसा, ध्यान, उपासना आदि आत्मज्ञान के ही उपलक्षण हैं। आत्मज्ञानी समत्व भाव युक्त समदर्शी होता है। मुमुक्षु और मुक्त के व्यावहारिक भेद को सामने रखकर यदि सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणों के स्वरूप पर विचार किया जाय तो किसी भी गुण में सत् होने का निर्देश सत्–चित्त स्वरूप आत्मा के समीप्य के कारण ही करते हैं। जितना–जितना आत्म सामीप्य जिस–जिस वृत्ति में है, वह–वह वृत्ति उसी मात्रा में शोधन द्वारा आत्म साक्षात्कार का उपाय है। काम, क्रोध, एंव लोभ आदि दुर्गुणों की वृत्तियाँ सगर्भ एंव सविषय होती हैं। किस विषय के प्रति काम है या क्रोध है– यह निश्चय करके तदाकार हुए बिना इन दुर्गुणों की स्थिति नहीं हो सकती। इसके विपरीत निष्कामता, अक्रोध एंव निर्लोभता आदि वृत्तियाँ यह अपेक्षा नहीं रखती कि ये किसके प्रति हैं।

विषयहीन वृत्ति अपने आश्रय रूप प्रत्यगात्मा से अपने को पृथक नहीं दिखती। अतः यह सत्रूप ही होती है। यही आत्म सामीपरू अपने ज्ञान सरूप आत्मा के नैतिक उपलक्षण है। उपनिषदों में आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये योग मार्ग का प्रतिपादन किया गया है, योग मार्ग के साधक के लिये यम–नियम करूणा तथा–ध्यान आदि साधन के अंगों का पालन करने का निर्देश है। सत्य, अपरिग्रह, अहिंसा, करूणा तथा ब्रह्मचर्य आदि योग साधना की प्रारम्भिक अनिवार्य पर्यावरण तथा पारिस्थितिक के संवाहक तत्व है। अतएव औपनिषद्–आत्मज्ञान सांसारिक दुःखों से मुक्ति का साधन नहीं, प्रत्युत समग्र पर्यावरण का शुभ एंव श्रेष्ठ संवाहक भी है।

संदर्भ

1. शर्मा, उमाकान्त. सर्वदर्शन संग्रह. पृष्ठ **55.**
2. वेदालंकार, आचार्य जयदेव. वैदिक दर्शन. पृष्ठ **6.**
3. चिन्मयानन्द, स्वामी. कठोप निषद. पृष्ठ **246.**
4. डा0 राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन–2. पृष्ठ **262.**
5. सिंह, कामेश्वर नाथ. अर्थ संग्रह. पृष्ठ **18.**
6. शास्त्री, रानारायण दत्त. महाभारत–3. पृष्ठ **2136.**
7. उनियाल, डा0 अम्बिका प्रसाद. भारतीय दर्शन में पर्यावरण. पृष्ट **111–12.**